ईश्वरवाद तथा अवतारवाद

✡ श्री सौभाग्यमल जैन, एडवोकेट
(शुजालपुर)

भारतीय दार्शनिक क्षेत्र में ईश्वर के अस्तित्व या अनस्तित्व का प्रश्न बहुचर्चित रहा है। मनुष्य में जब से वैचारिक क्षमता हुई तब ही से यह प्रश्न उसके मस्तिष्क में घूमा। ईश्वर संबंधी प्रश्नों पर विचार करने के पूर्व ईश्वर से क्या तात्पर्य है इस पर ऊहापोह आवश्यक है। ईश्वर, भगवान, परमात्मा, परमेश्वर, प्रभु, स्वामी आदि पर्यायवाची शब्द रहे है। ईश्वर शब्द में ऐश्वर्य का भाव निहित है। ऐश्वर्य सम्पन्न को भगवान कहा गया है। विष्णु पुराण में एक स्थान पर भगवान शब्द की व्याख्या की गई है:—

ऐश्वर्यस्य, समग्रस्य, धर्मस्य, यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव, षण्णां भग ईतीरिणा॥

सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य इस प्रकार छह जीवन व्यापी तत्वों का समावेश जिसमें हो उसे भगवान कहा जाता है। जिस प्रकार भौतिक सम्पदा सम्पन्न व्यक्ति को साहबे जायदाद कहा जाता है उसी प्रकार आध्यात्मिक सम्पदा के स्वामी को ईश्वर (साहबे औसाफ) कहा जाता है। धार्मिक मान्यताओं में ईश्वर संबंधी विवेचन में परस्पर भिन्नता इतनी है कि जिसके कारण ईश्वर का प्रश्न दुरूह हो गया। किसी के मतानुसार ईश्वर सृष्टि का कर्त्ता, हर्त्ता, नियामक, किसी के मतानुसार वह प्राणियों का भले-बुरे कर्मो का फल प्रदाता (पुरस्कर्त्ता या दण्ड प्रदाता) माना गया; किसी के निकट वह केवल द्रष्टा रहा; विष्णु सहस्रनाम में कहा गया है—

उत्पत्ति प्रलयं चैव, भूतानां अगतिं गतिम्।
वेत्ति विद्या, अविद्या च, सवाच्यो भगवान् (वि० स० ६।५।७८)

उपरोक्त श्लोक में भगवान को सृष्टि के उत्पत्ति, नाश का जानने वाला, सब प्राणियों की गति, अगति को जानने वाला, विद्या-अविद्या को जानने वाला बतलाया है। इस्लाम ने तो अल्ला को सृष्टि निर्माता तथा सब प्राणियों को उनके नेक तथा बद कार्यों के लिए पुरस्कर्ता तथा दण्डदाता के रूप में मान्यता दी। कहा जाता है कि योमे हिसाब (डे आफ जजमेन्ट) के दिन अल्लाह उनके कर्मानुसार वहिश्त तथा दोजख में भेजेगा। तात्पर्य यह है कि दार्शनिक क्षेत्र में ईश्वर का प्रश्न बहुरूपिता का रहा है। एक उर्दू के शायर ने इसी कारण लिखा था कि—

फलसफा की बहस से भी तो, खुदा मिलता नहीं।
दौरे तो सुलझा रहा हूँ, पर सिरा मिलता नहीं॥

लेखक के यथासंभव अध्ययन के अनुसार जैनदर्शन में ईश्वर शब्द बहु प्रचलित नहीं रहा। भगवान, परमात्मा आदि व्यवहृत रहे हैं। लेखक के मतानुसार, परमात्मा शब्द अधिक अर्थपूर्ण है। जैनदर्शन के अनुसार प्रत्येक प्राणधारी में परमात्मत्व प्राप्त करने की क्षमता Potentiality वर्तमान है। जिस क्षण प्राणी अपने समस्त कार्मण वर्गणाओं को नाश कर देता है, उसका परमात्मत्व प्रगट हो जाता है जैनदर्शन में प्रत्येक प्राणी उतना ही शुद्ध, बुद्ध, पवित्र है कि जितना परमात्मा। जैनदर्शन के अनुसार संसार दशा में जीव (आत्मा) पर कर्मो का आवरण है। यह आवरण दूर होते ही वह परमात्मा हो जाता है। यह परमात्मत्व कहीं बाहर से आकर उसे प्राप्त नहीं होता, अपितु स्वयं की सुप्त ज्योति से ही वह प्रगट होता है। जैनदर्शन में प्राणी के विकास (गुण विकास) evolution की मान्यता को गुणस्थान कहा गया है। १३वें गुणस्थान पर वह ४ कर्म (घातियाकर्मो) के आवरण से मुक्त होकर केवल ज्ञान प्रगट करता है तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४वें गुणस्थान में वह जीवन मुक्त हो जाता है। वही परमात्मा है। तात्पर्य यह है कि जैनदर्शन में उपरोक्त रीति से वर्णित ईश्वर (सृष्टि कर्त्ता, हर्त्ता या प्रतिपालक के रूप में या मजिस्ट्रेट या साक्षी के रूप में) मान्य नहीं रहा। ईश्वर का प्रश्न एक दार्शनिक प्रश्न है। धर्म से उसका विशेष सम्बन्ध नहीं है। ईश्वर के अस्तित्व से इन्कार करने वाला व्यक्ति भी धार्मिक हो सकता है। यदि उसमें मानवोचित सत्य, अहिंसा आदि गुण विद्यमान हैं। और एक ईश्वर अस्तित्व का हामी भी अधार्मिक हो सकता है यदि उसमें मानवोचित गुण न हो, किन्तु ईश्वर सम्बन्धी मान्यता का प्रश्न धर्म से अत्यन्त संलग्न हो गया है। एक पाश्चात्य विचारक ने लिखा है कि—

It is one of the identical fact of psychology that the average man can little exist of religious element of some kind as fish our of the water.

(In. Bravataky's Isis, vol. 21-25)

श्रमण-परम्परा की एक अन्य शाखा बौद्धधर्म के सम्बन्ध में भी कुछ विद्वानों का मत है कि तथागत बुद्ध ने ईश्वर सम्बन्धी मान्यता का निरपेक्ष इन्कार नहीं किया अपितु ईश्वर के नाम पर प्रचलित भाग्यवाद का प्रतिषेध किया था। उन्होंने मानवस्वभाव को ध्यान में रखकर एक स्थान पर कहा था कि "भिक्षुओ ! यदि प्राणी ईश्वर निर्माण के कारण सुख-दुःख भोगते हैं तो अवश्य तथागत अच्छे ईश्वर द्वारा निर्मित हैं।"[१]

वास्तव में देखा जावे तो ईश्वर सम्बन्धी विचार मानव की वैचारिक शक्ति के कारण ही है। जिस प्रकार मनुष्य में किसी भी प्रश्न के सम्बन्ध में क्यों ? कैसे ? कहाँ ? कब ?.....आदि उप-प्रश्न उठते हैं उसी प्रकार जब मनुष्य ने सृष्टि में सूर्य, चन्द्र, आकाश, आदि देखे, देवी विपत्ति देखी, उस समय मानव के मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई। कहा जाता है कि दर्शन-शास्त्र के मूल में जिज्ञासा ही होती है। वास्तविकता यह है कि उस समय वैज्ञानिक आविष्कार नहीं थे। प्रकृति के रहस्यों से वह परिचित नहीं था इस कारण उसने उन अज्ञात प्राकृतिक शक्तियों (उपकारक, सहायतादाता या भयानक) में देवत्व की कल्पना की। प्राकृतिक शक्तियों में देवत्व का आरोपण मानव के सहज विश्वास का कारण रहा। प्रसिद्ध विद्वान डा० इन्द्रचन्द्र शास्त्री एम. ए. पी. एच-डी. ने अपने एक लेख "भारतीय संस्कृति प्राग्वैदिक तथा वैदिक" में यह मत व्यक्त किया है कि ऋग्वेद संहिता में धर्म का जो रूप मिलता है उसे "प्रकृति पूजा" कहा जा सकता है। यहीं से दैवतावाद का प्रारम्भ हुआ। इस विश्वास की दो प्रतिक्रिया हुई (१) उनके प्रकोप को शान्त करने या उनको अपना सहायक बनाने के लिए अनुष्ठान प्रारम्भ हुए जो बाद में यज्ञ के रूप में परिवर्तित हुए। दूसरी ओर उन देवताओं के स्वरूप शक्ति के सम्बन्ध में विचार प्रारम्भ हुआ। ऋग्वेद के प्राचीन भाग में देवताओं का पृथक्-पृथक् व्यक्तित्व मिलता है। मगर १०वें मण्डल में एक ही सार्वभौम सत्ता के रूप में मान्य किया गया[२] वैदिक देवता में अग्नि, सौम। पृथ्वी आदि को पृथिवी स्थानीय, इन्द्र, रुद्र, वायु को अन्तरिक्ष स्थानीय तथा वरुण, मित्र, उनस, सूर्य आदि को द्यु स्थानीय माने गये[३] जैसे-जैसे मानव की वैचारिक क्षमता बढ़ी उसने एक ब्रह्म की कल्पना की, उपनिषद काल में जाकर हम देखते हैं कि जगत के मूलाधार एक ब्रह्म को ही मान्यता मिली। समस्त प्राणि जगत उसी का प्रतिरूप है। केवल ब्रह्म को ही सत्य माना गया। उपनिषदों में सारे विश्व को तद्रूप मान लिया गया। इस प्रकार बहुदेवतावाद भी आगे जाकर एकईश्वरवाद हो गया। प्रो० मेक्समूलर ने इस प्रकार के विकास को चार अवस्थाओं में विभाजित किया है।[४] वेदान्त में अनेक सम्प्रदाय द्वैतवाद, अद्वैतवाद आदि, हैं किन्तु वेदान्त का सबसे प्रसिद्ध सम्प्रदाय अद्वैतवाद (आचार्य शंकर) है। वादरायण के वेदान्त सूत्र का प्रारम्भ ही "अथातो ब्रह्म जिज्ञासा" से होता है। इस्लाम ने बहुत बलपूर्वक 'ऐकेश्वरवाद' का प्ररूपण किया है। इस्लाम का कलमा "ला इलाहा इल्लिलाह मुहम्मद रसूलुल्लाह" (एक ईश्वर के अतिरिक्त कोई नहीं है तथा हजरत मुहम्मद उसके रसूल, पैगम्बर हैं)। इस्लाम का आविर्भाव १५वीं शती में हुआ। किन्तु सूफी विचारधारा वेदान्त के अद्वैतवाद से अधिक प्रभावित रही है। उसमें भी ईश्वर के अतिरिक्त कोई अन्य का सद्भाव नहीं माना जाता। कहा गया है—

महबूब मेरा मुझ में है मुझ को खबर नहीं।
ऐसा छुपा है पर्दे में कि, आता नजर नहीं॥

सूफी सन्त ईश्वरीय प्रकाश मानव के अन्तरतम में ही मानकर कहते हैं—

दिल के आइने में है, तसवीरे यार
जब जरा गर्दन झुकाई, देखली।

ईश्वर को सर्वव्यापी भी बताया—**जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।**

तात्पर्य कि यह सूफी सन्तों के निकट उपनिषदकालीन ब्रह्म के जैसी अद्वैतवादी विचारधारा रही। स्वामी प्रेमानन्द ने उसी ईश्वर के विचारों में तल्लीन होकर कहा था:—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसी का राम काशी में, किसी का है मदीने में
किसी का जन, जमीं जर में किसी का खाने पीने में
कोई कहता 'गया' में है, किसी का योरेशलम में है।
प्रेमानन्द राम अपना या तो हरजाँ है, या सीने में है।

—मस्त सन्त प्रेमानन्द ने विभिन्न धार्मिक मान्यताओं में विहित पवित्र स्थानों को गिनाते हुए यह मत व्यक्त किया है कि मेरा राम (दशरथ पुत्र नहीं अपितु परम ब्रह्म) या तो सर्वव्यापी है या मेरे हृदय में है।

भारतीय दार्शनिक परम्परा में षट्दर्शन माने जाते है हालांकि उनकी गणना में विचारकों में मतभेद रहा है। किसी ने ऐसी दार्शनिक परम्परा को षट्दर्शन में मान्यता दी जो कि वेद प्रमाण मानकर चलती है। उन विचारकों ने वेद-प्रमाण न मानने वाले जैन, बौद्ध, चार्वाक दर्शन को षट्दर्शन के अन्तर्गत नहीं माना। बहरहाल न्यायदर्शन के सम्बन्ध में कहा जाता है कि न्यायदर्शन के भाष्यकार वात्स्यायन ने ईश्वर का उल्लेख किया है। यह भी कहा जाता है कि न्यायदर्शन का सम्बन्ध शैवमत के साथ है, जो जगत का नियामक ईश्वर माना जाता है। वैशेषिकदर्शन में ईश्वर को जगत का निमित्त कारण बताया जाता है। पूर्वमीमांसादर्शन का सम्बन्ध तो केवल वेद विहित यज्ञों के कर्मकाण्ड से है। इस कारण वैदिक देवताओं को प्रसन्न करने या उनको सहायक बनाने के लिये यज्ञ का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वेदान्तदर्शन के सम्बन्ध में पहले विस्तार से उल्लेख किया गया है। वहाँ पर तो निम्न महावाक्य पथ-प्रदर्शन करते हैं जो भारतीय दार्शनिक क्षेत्र में मानव को प्रकाश स्तम्भ का कार्य देते हैं।

१. **एकमेवाद्वितीयम्**

२. **तत्त्वमसि**—इस वाक्य में गुरु शिष्य को कहता है कि तू ही वह है।

यह एक विशेष बात है कि सांख्यदर्शन (जिसे पहली विचारधारा के अनुसार भी षट्दर्शन में गणना की जाती रही है) में ईश्वर के संबंध में निश्चित धारणा नहीं हैं। यह तो बिल्कुल स्पष्ट है कि सांख्यदर्शन में सृष्टि के नियामक के रूप में किसी ईश्वर की कल्पना नहीं है। कार्य-कारण के आधार पर सृष्टि की उत्पत्ति, नियमन होता है। दो तत्व (१) पुरुष और (२) प्रकृति माने गये। सांख्यप्रवचन में तो "**ईश्वरासिद्धेः**" कहा गया है यानी किसी प्रमाण से ईश्वर की सत्ता सिद्ध नहीं है। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि सांख्यदर्शन वेद-प्रमाण नहीं मानता; अपितु उसकी मान्यता जैनदर्शन के अधिक निकट है। योगदर्शन में भी मानसिक एकाग्रता के लिये ईश्वर के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है, सृष्टि के कर्त्ता के रूप में नहीं। इसी आधार पर योगदर्शन को '**सेश्वरसांख्य**' भी कहा जाता है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय दार्शनिक परम्परा में चार्वाकदर्शन को छोड़कर लगभग सब दर्शन ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करते हैं। यह बिल्कुल सत्य है कि ईश्वर के स्वरूप, आदि बातों में परस्पर भिन्नता इतनी विशाल है कि जिसके कारण कभी-कभी विचारक जैन, बौद्ध, सांख्यदर्शन को निरीश्वरवादी मान लिया जाता है। यदि गहराई से विचार करे तो शुद्ध रूप से केवल चार्वाक दर्शन ही निरीश्वरवादी दर्शन है शेष किसी न किसी रूप में ईश्वर के अस्तित्व को मानते हैं। यह एक तथ्य है कि अधिकतर धर्माचार्य एशिया में ही उत्पन्न हुए; कुछ के निकट ईश्वर निराकार, कुछ के निकट ईश्वर साकार था। गांधीवादी सुप्रसिद्ध विचारक काका कालेलकर ने अपने एक लेख 'दस अवतारों की कल्पना तथा विकासवाद' में यह मत प्रतिपादित किया है कि हिन्दूधर्म के दो विभाग स्पष्ट हैं—एक वेदान्ती हिन्दूधर्म तथा दूसरा पौराणिक हिन्दूधर्म। हालांकि मान्यताभेद के बाद भी एक-दूसरे को दोनों सहन करते हैं।[५] एक ब्रह्म के बाद विश्व की तीन शक्ति का उल्लेख किया जाता है—(१) ब्रह्मा, (२) विष्णु, (३) महेश। जहाँ तक लेखक की अल्प माहिती है ब्रह्मा उत्पत्ति का, विष्णु प्रतिपालक का, महेश नाश का प्रतीक है। यही तीन शक्तियाँ विश्व का संचालन करती हैं। जैनदर्शन में त्रिपदी का महत्व है। उत्पत्ति, ध्रौव्य, विनाश। मान्यता यह है कि तीर्थंकर अपने प्रमुख शिष्य (जिन्हें गणधर कहा जाता है) को इसी त्रिपदी का ज्ञान प्रदान करते हैं तथा यह द्वादशांगी (१२ प्रमुख शास्त्र) का निर्माण करते हैं। केवल यही नहीं क्रिश्चयानिटी में भी त्रिनटी के सिद्धान्त की चर्चा प्राप्त है।[६]

"अवतार" शब्द के संबंध में डा० कपिलदेव पाण्डे ने अपने शोध-प्रबन्ध ("मध्य कालीन साहित्य में अवतारवाद" की पीठिका) में विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। इतनी विस्तृत चर्चा यहाँ अपेक्षित नहीं है। साधारणतया भारतीय धार्मिक जगत में "अवतार" शब्द के साथ "उत्तार" शब्द भी व्यवहृत है। वैदिक तथा पौराणिक जगत में अवतार तथा श्रमण परम्परा ये उत्तार शब्द का प्रयोग होता है। "अवतार" शब्द सामान्य उत्पत्ति या जन्म के अर्थ में नहीं लिया जाता अतः विष्णु या अजन्मा ईश्वर के जन्म या उत्पत्ति को ही अवतार कहा जाता है।[७] प्रारम्भिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवतारवाद का संबंध मुख्य रूप से विष्णु से ही लिया जाता रहा, किन्तु विष्णु के प्रयोजन सहित जन्म का वृत्तान्त वैदिक साहित्य में विरल है। फिर भी जिन उपादानों से महाकाव्य एवं पौराणिक विष्णु तथा उनके अवतार का विकास हुआ है अधिकांश में इन्द्र तथा प्रजापति से अधिक सम्बन्धित रहा है। कालान्तर में विष्णु को सर्वश्रेष्ठ मानकर सब उन पर आरोपित हो गया। अवतारवाद के मुख्य प्रयोजन में रक्षा मुख्य था। असुरों से युद्ध के लिये बल पराक्रम की आवश्यकता थी। वह वैदिक विष्णु में थी। उन्हें इन्द्र का सखा भी बताया गया तथा विभिन्न वैदिक ऋचाओं में उनकी स्तुति की गई।[८] भारतीय मध्यकालीन साहित्य में अवतार की जो चर्चा मिलती है उसका प्रारम्भिक परिचय महाभारत एवं पुराणों में मिलता है। महाभारत के "नारायणीयोपाख्यान" में न्यून अन्तर के साथ ४, ६, १० के क्रम में अवतारों की तीन सूची प्राप्त हैं। श्री भाण्डारकर ने इस उपाख्यान के विश्लेषण में उपलब्ध वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, रामदशरथी तथा कृष्ण इनके अवतारों को प्रथम सूची में शामिल किया है, फिर से, कूर्म, मत्स्य तथा कल्कि को मिला कर दूसरी सूची १० की बनाई है[९]। विष्णु पुराण में दशावतार का कोई उल्लेख नहीं मिलता। किन्तु अग्नि, वराह आदि परवर्ती पुराणों में मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध, बल्कि यह क्रम मिलता है।[१०] निर्गुण तथा निराकार ईश्वर के उपासक सन्त भक्तों के पदों में कहीं-कहीं दशावतार का प्रासंगिक जिक्र मिलता है। हालांकि इस वर्ग के सभी सन्त अवतारवाद के साथ ही दशावतार के आलोचक रहे हैं। कुछ सन्त ऐसे हुए हैं कि जिन्होंने सगुणोपासक सन्तों की भाँति दशावतार का विस्तृत वर्णन किया है। क्षेत्र की दृष्टि से महाराष्ट्र तथा बंगाल के सन्तों ने दशावतार की चर्चा की है। निर्गुण सन्त कबीर ने अपने "कबीर बीजक" में संग्रहीत एक पद में कहा है कि "जो अवतरित होकर लुप्त हो जाते हैं, वे ईश्वर के अवतार नहीं हैं, अपितु यह सब माया का कार्य है।" कबीर वचनावली में कहा गया है कि ये दशावतार निरंजन कहे जाने पर भी अपने नहीं हो सकते क्योंकि इन्होंने भी साधारण मनुष्यों की तरह अपनी-अपनी करनी का फल भोगा है। अन्य निर्गुण सन्तों ने भी दशावतार की आलोचना की है। सन्त मलूकदास ने तो दशावतार के मूल उद्गम के सम्बन्ध में ही सन्देह व्यक्त किया है। बड़े आश्चर्य से पूछते हैं ये दशावतार कहाँ से आए ? किसने इनका निर्माण किया ? सन्त रज्जव अवतार की १० तथा २४ संख्या देखकर ही भड़कते हैं। तथा ऐसे धनी का स्मरण करते हैं जो सब कर्ता सर-मौर है[११] बौद्ध तथा जैन साहित्य में चौबीस तीर्थंकर तथा २४ बुद्धों का जिक्र मिलता है। इसी पर से भागवत धर्म में भी अवतार की संख्या २४ मानली गई। फिर भी जैनदर्शन में २४ तीर्थंकर की वार्ता जितनी रूढ़ है उतनी बौद्ध या भागवत धर्म में नहीं मिलती। बौद्ध तथा वैष्णव मत में बुद्ध की विविध रूपों तथा विष्णु के अवतारों की संख्या सदैव एकसी नहीं रही है।[१२] दशावतार में प्रथम मत्स्यावतार (जल में रहने वाला), कूर्मावतार (जो पानी तथा भूमि पर चले, कछुए के पैर होते ही हैं)। इसके बाद पूर्ण पशु वराह का अवतार हुआ। उसके पश्चात् नृसिंहावतार (जो आधा पशु तथा आधा मानव), वामन तथा उसके बाद वाण से स्वयं तथा पर की रक्षा करने वाले राम (जिन्होंने रावण के विरुद्ध अन्याय का प्रतिकार करने के लिए वाण चलाये तथा मर्यादा पूर्वक राज्य चलाया), आठवाँ कृष्णावतार (जिन्होंने स्वयं राज्य नहीं किया। किन्तु पाण्डवों की सहायता की)। काका कालेलकर ने अपने उपरोक्त लेख में यह मत व्यक्त किया है कि इसके बाद हिन्दू धर्म का विकासक्रम रुक गया। लेखक के नम्र मत में हमारी भारतीय दार्शनिक सहिष्णुता तथा हमारे वैचारिक वैभव का यह परिणाम रहा कि तथागत बुद्ध को नवें अवतार के रूप में अपना लिया। जिन्होंने थोड़ी अहिंसा चलाई। काका साहब ने यह मत भी व्यक्त किया है कि इसके बाद पूर्ण अहिंसक समाज की रचना के लिहाज से भगवान महावीर होने चाहिए थे किन्तु हिन्दू धर्म ने कल्कि अवतार को १०वाँ स्थान दे दिया। तात्पर्य यह है कि अवतारवाद में जो विकास क्रम था वह टूट गया। फिर भी मानव की विकास कथा अवतारवाद के द्वारा रूपक तथा अलंकार के शब्दों में प्रस्तुत हुई, इसमें शंका नहीं है। साथ ही किसी समय खोजा सम्प्रदाय के प्रधान पीर सदर अलदीन ने दशावतार नाम की एक पुस्तक लिखी है जिसमें १०वें अवतार 'अली' को बताया है। नौ अवतार तक को उपरोक्त रीति से मानकर १०वाँ अवतार 'अली' घोषित करके विचित्र समन्वय का प्रयास किया गया है। 'पीरजाद' सम्प्रदाय में विष्णु के दशावतार की परम्परा है उसमें दसवाँ 'निष्कलंक' को परम देव (भावी अवतार) मानते हैं। तात्पर्य यह हैं कि हिन्दूधर्म के अलावा सूफी खोजा आदि में भी दशावतार की मान्यता का प्रचलन था।[१३]

इधर भागवत धर्म में जैन तीर्थंकर ऋषभदेव को ८वें अवतार के रूप में अपनाया गया तथा उनकी परम योगी आदि विशेषणों से प्रशंसा की गई है। यह कितना प्रशंसनीय समन्वयात्मक आदान-प्रदान रहा कि जैनधर्म ने राम तथा कृष्ण को अपने यहाँ त्रिषष्टिशलाका पुरुषों में स्थान देकर उन्हें बलभद्रवासुदेव घोषित किया। ६३ शलाका पुरुषों का जैनधर्म में अत्यन्त आदर के साथ नाम लिया जाता है। भागवत पुराण में अवतारों की संख्या २४ मान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ली गई है जैसा कि उल्लेख किया गया है इस संख्या वृद्धि में जैन-बौद्ध परम्परा का प्रभाव ज्ञात होता है। बौद्ध परम्परा में २४ अतीत बुद्ध तथा जैन परम्परा में २४ तीर्थंकर मान्य किये गये हैं। बौद्ध जातकों में भगवान राम का पुनरवतार भवगान बुद्ध को मान लिया गया तथा कल्कि के स्थान पर भावी अवतार "मैत्रेयबुद्ध" होने की घोषणा की गई है।[१४] जैन परम्परा के "अवतार" शब्द के स्थान पर गुणों के आधार पर मानव के विकास के साथ ही कैवल्य प्रकट होने तथा सिद्ध-बुद्ध होने की बात मान्य की गई है इसे ही "उत्तारवाद" माना गया है। मोटे तौर पर मौलिक दृष्टि से देखा जावे तो जैन परम्परा के अनुसार इस्लाम में भी अवतार की कल्पना नहीं की जा सकती। ईसाई धर्म में तो ईसा को ईश्वरपुत्र माना गया है। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक धार्मिक परम्परा में अवतार की कल्पना रही है चाहे उनके स्वरूप में मत भिन्नता हो, उस प्रश्न के approach में भिन्नता हो। यह सत्य है कि कुछ आचार्यों ने अवतार में अंश, कला, विभूति का परिणाम भी निश्चित किया जैसे कृष्ण को पूर्णावतार माना जाता है। राम को मर्यादा पुरुषोत्तम कहा जाता है।

अवतार स्वयं ब्रह्म की प्रतीकात्मक स्थिति है। मनोवैज्ञानिक लोगों का यह विश्वास रहा है कि मनुष्य समुदाय प्राचीन काल के किसी अति उच्च या सर्वोच्च मानव की प्रभुता में विश्वास रखता था इसे (superman) या पुरुषोत्तम कहा जा सकता है। फ्रायड (जो प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक हुआ है) ने अपनी एक पुस्तक में यह मत रखा है कि अनेक अभाव से पीड़ित मानव ने सदैव एक नेता या अतिमानव की कल्पना की है। प्रारम्भ में अवतार दो या दो से अधिक भूगर्भीय युगों के संधिकाल के प्रतिनिधि प्रतीत होते हैं। थियासाफिकल सोसायटी की स्थापिका डा० ऐनीबीसेन्ट ने अपनी एक पुस्तक में--

१ मत्स्ययुग—सिलरियन एज
२ कूर्म युग—एम्फीवियन एज
३ वराह युग—मेमेलियन एज
४ नृसिंह युग—लेमूरियन एज

को बताकर वामन आदि अवतारों को भी मानव सभ्यता के विकास युगों का प्रतिनिधि बताया है। एक अन्य विद्वान तो वामन अवतार को भी इसी प्रकार बताते हुए परशुराम को प्रारम्भिक मनुष्य या शिकारी युग का, राम को धनुषधारी माक्डमेन, तथा कृष्ण, बुद्ध को परिष्कृत मानव के सूचक बताता है।[१५] वेदान्तदर्शन ने एकमात्र सत्य ब्रह्म को मानते हुए भी प्रतीतमान विश्व व निम्न छः तत्त्व को अनादि माना है—(१) ब्रह्म, (२) ईश्वर, (३) जीव, (४) जीव तथा ईश्वर का परस्पर भेद, (५) अविद्या, (६) अविद्या तथा चैतन्य का सम्बन्ध।

कुछ विचारकों ने ईश्वर तथा परमेश्वर में भी अन्तर निरूपण किया है। परमेश्वर यानी सर्व तथा ईश्वर को आत्मा की एक क्रिया के रूप में बताया है। इस अर्थ में परमेश्वर को ब्रह्म कहा जा सकता है। मुझे स्मरण है कि १-२ वर्ष पूर्व Illustrated weekly में Modern Bhagwan of India शीर्षक कुछ सामग्री प्रकाशित हुई थी। वैसे जैनदर्शन के निश्चय नय के आधार पर प्रत्येक प्राणी में ईश्वरत्व वर्तमान है, किन्तु व्यवहारनय की अपेक्षा से वह कर्ममल से लिप्त होने के कारण अपने को भगवान् होने का दावा नहीं कर सकता। यह आश्चर्य का विषय है कि इन तथाकथित भगवानों ने किस प्रकार भोली जनता का विश्वास अर्जित कर ठगने का जाल रचा रखा है। मुझे उर्दू का एक फिकरा स्मरण आता है—

जरदार के पल्ले में शुहरत, मुफलिसका जहाँ में नाम नहीं।
कसरत है खुदाओं की इतनी, बन्दे का यहाँ कुछ काम नहीं॥

वर्तमान युग में अर्थ प्राधान्य इतना हो गया है कि उसके मुकाबले में सब शक्तियाँ नगण्य हो गई हैं। इस कारण उक्त फिकरे में कवि कहता है कि प्रसिद्धि भी केवल धनिक की हो रही है। अभावग्रस्त का इस संसार में कोई ठिकाना नहीं है। इसी प्रकार तथाकथित भगवानों की भी इतनी अधिकता हो गई है कि यहाँ अब बन्दे का काम नहीं रहा है।

यह एक प्रसन्नता की बात है भारतीय विचारधारा में परस्पर भिन्नता होने पर भी समन्वय का सूत्र दार्शनिकों की दृष्टि से ओझल नहीं हो पाया। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है भारतीय दार्शनिक विचारधारा में वैदिक तथा अवैदिक परम्पराओं ने परस्पर कितना आदान-प्रदान किया है। इसी कारण इस पुण्य भूमि में वैचारिक वैभव की प्रचुरता रही। इस वैभव के कारण ही दार्शनिक विद्वानों को तत्त्वों की गहराई तक जाने तथा विचार करने का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुअवसर मिला है। जिस प्रकार अभारतीय धर्मों में जो rigidity रही, वैचारिक क्षमता पर अंकुश लगे या भिन्न विचार को जिस प्रकार दबाया गया उस कारण से वहाँ दार्शनिक क्षेत्र में वैचारिक संकुचितता ही रही। एक जैन आध्यात्मिक योगी सन्त आनन्दघन ने क्या सुन्दर कहा था—

राम कहो, रहमान कहे, कोई कान्ह कहे, महादेव री।
पारसनाथ कहो, कोई ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वयंदेव री।
भाजन भेद कहावत नाना, एक मृत्तिका रूप री।
तैसे खण्ड कल्पना रोपित, आप अखण्ड स्वरूप री।
निज-पद रमे सो राम कहिए, रहम करे रहमान री।
करे करम कान्ह सो कहिए, महादेव निर्माण री।
परसे रूप पारस सो कहिए, ब्रह्म चिन्हे सो ब्रह्म री।
इस विधि साधो, आप आनन्दघंन, चेतनमय निष्कर्ष री।

सन्दर्भ स्थल :—

१ देवदहसुतन्त मज्झिम निकाय ३-१-१
२ हमारी परम्परा—श्री वियोगी हरि, पृष्ठ २०
३ वही, पृष्ठ १२८
४ वही, पृष्ठ २०
५ "मंगल प्रभात" साप्ताहिक दिनांक १५।३।७६ अंक
६ पूर्व और पश्चिम कुछ विचार—डा० राधाकृष्णन, पृष्ठ ९३
७ मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद—पीठिका, पृष्ठ ११—डा० कपिल देव पांडे
८ वही, पृष्ठ ११-१२
९ वही, पृष्ठ १४१
१० वही, पृष्ठ १४१
११ वही, पृष्ठ १४८
१२ वही, पृष्ठ २४
१३ वही, पृष्ठ २७९
१४ वही, पृष्ठ ४७०
१५ वही, पृष्ठ ६६२

पुष्कर वाणी

मनुष्य जैसा सोचता रहता है, वैसा ही बनता है। अगर आप दूसरों के दोषों और बुराइयों का चिन्तन करते रहेंगे तो वे दोष आदि आपके भीतर प्रविष्ट हो जायेंगे। बुराई सोचने वाला स्वयं बुरा बन जायेगा।

अगर आप किसी के गुणों का चिन्तन करेंगे तो निःसंदेह वे गुण आपके भीतर निवास करने लगेंगे।

इसीलिए तो कहा है—दोष को त्यागकर गुणों का चिन्तन करो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org